जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

भटकना श्रद्धा का दोष है और अटकना चारित्र की कमजोरी है। ह्न बिन्दु में सिन्धु, पृष्ठ-12

वर्ष : 28, अंक : 19 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जनवरी (प्रथम) 2006 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

द्रव्य-गुण-पर्याय वर्ष का प्रारंभ

सनावद (म.प्र.) : छहढाला वर्ष की अपूर्व सफलता के पश्चात् अब सनावद से द्रव्य-गुण-पर्याय वर्ष का प्रारंभ हुआ है। यह आयोजन श्रीमती धर्मवती धर्मपत्नी जवरचंदजी पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा गोपालदासजी बरैया समिति के तत्त्वावधान में प्रारंभ किया गया है।

द्रव्य-गुण-पर्याय वर्ष में 10 विषय रखे गये हैं और प्रत्येक माह उन विषयों के आधार पर मात्र विकल्पात्मक प्रणाली से पेपर लिया जा रहा है/लिया जायेगा। उन विषयों के नोट्स फाईल सभी श्रोता/परीक्षार्थियों को दे दे गई है। यह फाईल हर तीन माह में एक बार दी जायेगी अर्थात् वर्ष में चार फाईलें परीक्षार्थियों को दी जायेगी।

अब तक इस द्रव्य-गुण-पर्याय वर्ष में सनावद, खण्डवा, शाहपुर, बुरहानपुर, मलकापुर, मण्डलेश्वर, महेश्वर, पंधाना, कसरावद, बैडिया, मुम्बई, औरंगाबाद तथा इन्दौर के विभिन्न उपनगरों से 825 परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके हैं। विद्वानों के अथक् प्रयास से सभी में तत्त्वज्ञान का मर्म समझने की अपूर्व ललक लगी है।

इस द्रव्य-गुण-पर्याय वर्ष के सम्पूर्ण कार्य **पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद** के निर्देशन एवं **पण्डित रितेशकुमारजी शास्त्री सनावद** के संचालन में चल रहे हैं। इन्दौर में यह कार्य श्री रितेशजी जैन बैडिया एवं श्री मनीषजी टीकमगढ़ के संचालन में हो रहा है।

कार्यक्रम 1 अक्टूबर, 05 से प्रारंभ हो चुका है और 30 सितम्बर, 06 तक सुचारु रूप से चलेगा।

साधना चैनल पुन: आरंभ

विगत कुछ दिनों से जयपुर के आस-पास राजस्थान में साधना चैनल का प्रसारण नहीं हो पा रहा था; किन्तु अब यह भास्कर टी.वी. नेटवर्क के माध्यम से पुन: आरंभ हो गया है। अत: प्रतिदिन रात्रि में 10.20 पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों को देखना/सुनना न भूलें। प्रसारण में 5-7 मिनिट की देरी भी हो सकती है।

यदि निर्धारित समय से 10 मिनिट बाद तक भी प्रवचन प्रारंभ नहीं हो तो श्री पीयूषकुमारजी शास्त्री से 9414717829 अथवा (0141) 2705581 नं. पर सम्पर्क करें।

अलीगढ़ में ब्र. यशपालजी जैन

यहाँ मंगलायतन में दिनांक 13 से 15 नवम्बर, 05 तक ब्र. यशपालजी जैन जयपुर, पण्डित रमेशजी दाऊ एवं श्री अश्विनभाई मुम्बई पधारे। यहाँ उन्हें **मंगलायतन** संस्था का विस्तार से परिचय दिया गया साथ ही **धन्य मुनिदशा योजना** की विस्तृत जानकारी दी गई।

दिनांक 14 नवम्बर को रात्रि में उपस्थित जन समुदाय को ब्र. यशपालजी जैन के अगुरुलघुत्व गुण पर हुये विशेष प्रवचन का लाभ मिला। श्री पवनजी जैन ने विद्यार्थियों को ब्र.यशपालजी आदि तीनों महानुभावों का परिचय दिया। मंगलायतन संस्था एवं यहाँ चल रही विद्यार्थियों की धार्मिक एवं लौकिक प्रगति को देखकर सभी ने प्रसन्नता व्यक्त की।

सभी को अलीगढ़ नगर के प्राचीन जिनमंदिरों के अतिरिक्त पण्डित दौलतरामजी की साधनास्थली **सासनी** के जिनमंदिरों के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। मंगलायतन से जयपुर लौटते समय मार्ग में आप सभी ने आगरा में पण्डित बनारसीदास से संबंधित जिनमंदिर के दर्शन किये।

कल्पद्रुम महामण्डल विधान सम्पन्न

हिंगोली (महा.) : यहाँ महावीर भवन में 27 नवम्बर से 4 दिसम्बर, 05 तक कल्पद्रुम महामण्डल विधान अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य विधानाचार्य पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित प्रशांतजी काले, पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ़ एवं पण्डित पुनीतजी मंगलायतन द्वारा सम्पन्न कराये गये।

इस अवसर पर पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के प्रवचनों का लाभ मिला।

अ.भा. जैन युवा फैडरेशन शाखा, हिंगोली द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम का प्रारंभ दिनांक 27 नवम्बर को भव्य मंगल कलश शोभायात्रा से हुआ तथा दिनांक 4 दिसम्बर को श्री शांतिनाथ दि. जैन मंदिर में कलशारोहण के पश्चात् विशाल शोभायात्रा द्वारा महोत्सव का समापन किया गया।

कार्यक्रम को सफल बनाने में जैन महिला मण्डल, चैतन्य यूथ ग्रुप, निकलंक युवा मंच एवं पण्डित अमोलजी संघई का विशेष सहयोग रहा। सभी कार्यक्रम पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

इस अवसर पर लगभग 2500 साधर्मियों ने लाभ लिया तथा लगभग 8000 रुपयों का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा। **ह्न कुशल यंबल**

सम्पादकीय –

नींव का पत्थर

17

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

यद्यपि जीव व अजीव दोनों द्रव्य हैं, तथापि जीव के परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मवर्गणाएँ स्वतः अपनी तत्समय की योग्यता से रागादि परिणामरूप परिणमित होती है। इसप्रकार जीव के व कर्म के कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि न तो जीव पुद्गलकर्म के किसी गुण का उत्पादक है और न पुद्गल जीव के किसी गुण का उत्पादक है। केवल एक-दूसरे के निमित्त से दोनों का परिणमन अपनी-अपनी योग्यतानुसार होता है। इस कारण जीव सदा अपने भावों का ही कर्ता होता है, अन्य का नहीं।

यद्यपि आत्मा वस्तुतः केवल स्वयं का ही कर्ता-भोक्ता है, द्रव्यकर्मों का नहीं, तथापि द्रव्यकर्मों के उदय के निमित्त से आत्मा को सांसारिक सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता कहा जाता है, परन्तु ऐसा कहने का कारण पर का या द्रव्यकर्म का कर्तृत्व नहीं है, बल्कि आत्मा में जो अपनी अनादिकालीन मिथ्या मान्यता या अज्ञानता से राग-द्वेष-मोह कषायादि भावकर्म हो रहे हैं, उनके कारण यह सांसारिक सुख-दुख का कर्ता-भोक्ता होता है। वस्तुतः आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ, अतः वह किसी का कार्य नहीं है तथा वह किसी को उत्पन्न नहीं करता, इस अपेक्षा वह किसी का कारण भी नहीं है। अतः दो द्रव्यों में मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है।

आत्मा जब तक कर्मप्रकृतियों के निमित्त से होने वाले विभिन्न पर्यायरूप उत्पाद-व्यय का परित्याग नहीं करता, उनके कर्तृत्व-भोक्तृत्व की मान्यता को नहीं छोड़ता; तबतक वह अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि एवं असंयमी रहता है। तथा जब वह अनंत कर्म व कर्मफल के कर्तृत्व-भोक्तृत्व के अहंकारादि एवं असंयमादि दोषों से निवृत्त होकर स्वरूपसन्मुख हो जाता है, तब वह तत्त्व ज्ञानी सम्यक्दृष्टि एवं संयमी होता है।

इसप्रकार विराग ने अनेक युक्तियों और आगम के प्रमाणों के आधार पर वस्तुस्वातंत्र्य के संदर्भ में ह्न 'दो द्रव्यों में कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध' होता ही नहीं है, मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। यह भलीभाँति समझाया, जिसे सुनकर श्रोता बहुत प्रभावित तो हुए ही, लाभान्वित भी हुए। उन्होंने अभी तक ऐसे वीतरागतावर्द्धक और साम्यभावोत्पादक गंभीर व्याख्यान सुने ही नहीं थे। वे अबतक मात्र भगवान महावीर स्वामी की जीवनी और उनके अहिंसा-सिद्धान्त के नाम पर बहुत स्थूल चर्चा ही सुनते आये थे। अतः नवीन विषय सुनकर सभी श्रोता प्रसन्न थे।

आभार प्रदर्शन करते हुए संचालिका ज्योत्स्ना ने भविष्य में भी इसी तरह के लाभ की आशा और अपेक्षा की भावना व्यक्त की। अन्त में भगवान महावीर स्वामी की जयध्वनिपूर्वक सभा विसर्जित हुई। ●

क्या मुक्ति का मार्ग इतना सहज है?

'नाच न जाने आँगन टेड़ा' मुहावरे के मुताबिक ह्न सामान्यजनों द्वारा अपनी भूल को स्वीकार न करके ह्न अपने दोषों को दूसरों पर आरोपित करने की पुरानी परम्परा रही है। इसी परम्परा के अन्तर्गत जीवराज की भटकन को मोहनी के माथे मड़ा जाता रहा, जबकि जीवराज के जीवन में हुए उतार-चढ़ाव में मोहनी का कोई अपराध नहीं था; क्योंकि वह तो निमित्त मात्र थी और परद्रव्य रूप निमित्तों को तो आगम में अकिंचित्कर कहा है; क्योंकि दो द्रव्यों के बीच अत्यन्ताभाव की वज्र की दीवाल खड़ी रहती है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का भला-बुरा कुछ भी नहीं करता, फिर भी मोहनी पर जो दोषारोपण किया गया, वह सर्वथा निराधार भी नहीं था; क्योंकि वह जीवराज के अपराध में सहचारी तो बनी ही थी। लोक में दोषारोपण करने के लिए सहचारी होना ही पर्याप्त कारण होता है। इस कारण लौकिक जनों द्वारा मोहनी पर कलंक का टीका लगना था सो लगता रहा।

इन मिथ्या आरोपों से त्रसित होकर कर्मकिशोर के सम्पूर्ण परिवार के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए ज्ञानियों ने कहा है कि ह्न

''कर्म विचारे कौन भूल तेरी अधिकाई।
अग्नि सहे घन घात, लोह की संगति पाई।।

जिस तरह लोहे का साथ देने मात्र से निर्दोष अग्नि को घन की चोटें सहनी पड़तीं हैं, इसीप्रकार हे अज्ञानी ! भूल तो तेरी है, तू अज्ञान के कारण परद्रव्यों से राग-द्वेष करके कर्मों को आमंत्रित करता है, कर्मों के आस्रव का कारण बनता है और दोष कर्मों के माथे मढ़ता है। जबकि ये विचारे तो जड़ हैं, इस कारण कुछ जानते ही नहीं हैं। ऐसे निर्दोष कर्मों को अज्ञानी जीव का साथ देने मात्र से गालियाँ खानी पड़ती हैं।''

अज्ञानी की मनोवृत्ति को व्यक्त करते हुए आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में तो यहाँ तक लिखा है कि '**अज्ञानी जीव स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मों के माथे मढ़ता है, सो यह अनीति तो संभवै नाहीं।**

एक दिन कर्मकिशोर ने सोचा ह्न ''जीवराज पहले से बहुत कुछ बदला-बदला सा लगता है, उसने मोहनी का साथ तो छोड़ ही दिया और अपनी पूर्व पत्नी समताश्री को पुनः अपना लिया है। मोहनी की संतान अनुराग, हास्य, रति और माया आदि से भी सम्बन्ध विच्छेद का संकल्प करके पुत्र विराग और पुत्री ज्योति से स्नेह करने लगा है।

अब वह बहुत शान्त, सुखी और सदाचारी हो गया है। एक दिन उससे मिलकर मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब वह बीमार था तब उसकी मनःस्थिति कैसी थी। वह अपनी भटकन के बारे में क्या सोचता था और अब उसकी भावी जीवन के प्रति क्या-कैसी योजना है? वह अपना शेष जीवन किस तरह जीना चाहता है?''

यह सब जानने के लिए कर्मकिशोर जीवराज के पास पहुँचा। यद्यपि जीवराज की भटकन में और बीमारी में कम-बड़ रूप से कर्मकिशोर के पूरे परिवार का निमित्तपना था; फिर भी उसने कर्मकिशोर के प्रति साम्यभाव रखा और उसका स्नेहपूर्वक स्वागत किया; क्योंकि अब उसे यह जानकारी हो गई थी कि कर्मकिशोर और इनके परिवार की कोई गल्ती नहीं है। मैं स्वयं ही अपनी भूल से भटका था और स्वयं ही अपनी भूल सुधार कर सही रास्ते पर आया हूँ।

जीवराज से स्नेह पाकर कर्मकिशोर गद्-गद् हो गया; क्योंकि उसे जीवराज से ऐसे स्नेह की आशा नहीं थी। वह सोचता था कि ''मेरे कारण ही तो प्रारंभ में इसकी ऐसी दुर्दशा हुई थी, अतः उससे मुझे उपेक्षा ही मिलेगी;'' पर ऐसा नहीं हुआ। इसकारण वह मन ही मन बहुत खुश था।

कर्मकिशोर ने जीवराज से पूछा ह्न ''जीवराज ! मेरी बहिन मोहनी और उसके साथ वेदनी आदि ने आपको इतना परेशान किया, आपकी बदनामी में कारण बनी, छलबल से आपका धन अपहरण किया और जब आपकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई तो ऐसी दुर्दशा की हालत में आपसे मुँह मोड़ लिया, आपके साथ दुर्व्यवहार करने लगी' आपकी उपेक्षा कर दी। फिर भी आप हम लोगों के साथ ऐसा सद्व्यवहार कैसे कर रहे हो? हमारे प्रति आपके हृदय में ऐसा सम्मान, ऐसा साम्यभाव ! ऐसी सहज उदारता की संभावना हमें नहीं थी। हम डर रहे थे कि पता नहीं आप हमारे साथ कैसा सलूक करेंगे? हम सोच रहे थे ह्न आप हमसे पूछेंगे ह्न कहो, कर्मकिशोर ! तुम्हारे साथ कैसा सलूक किया जाय? परन्तु आपने ऐसा कुछ नहीं किया, इसका राज क्या है ? पहले तो मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ ?

मोहनी ने तो मुझे तुमसे मिलने से ही मना किया था कि 'मत जाओ अपमानित होने के लिए। वह तुम्हें धक्का मारकर निकलवा देगा। पता नहीं इन मनुष्यों की अपने बारे में ऐसी गलत धारणा क्यों है? गल्तियाँ खुद करते हैं, दोष दूसरे के माथे मढ़ते हैं?'

मोहनी ने यह भी बताया कि ''देखो न! मैंने तो उसे बुलाया नहीं था, उसने स्वयं ने ही मुझ पर मोहित होकर अपनी समता जैसी सुशील सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न धर्मपत्नी को छोड़कर मुझे अपनाया। न केवल सर्वसाधारण की तरह मात्र सम्पर्क किया, बल्कि मेरे प्रति उसके मन में ऐसा स्नेह उमड़ा, पागलन छाया कि वह सब सुध-बुध ही खो बैठा।

उसका ऐसा स्नेह और आकर्षण देखकर मैंने भी सब ओर से अपना ध्यान हटाया और उसे ही अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। मुझ अनजान को क्या पता था कि ये मनुष्य ऐसे भावुक और धोखेबाज होते हैं?

कुछ दिनों बाद जब मैं उसके कई बेटे-बेटियों की माँ बन गई तो वह पता नहीं किसके कहने-सुनने से, किसके बहकावे में आकर पुनः अपनी पूर्व पत्नी समता को सोते-सोते में याद करने लगा। तब मैंने ऐसा अनुभव किया कि 'मेरी तरफ इसकी रुचि कम होती जा रही है और समता की ओर उसका आकर्षण पुनः बढ़ रहा है तो मैं उदास एवं हताश हो गई। यह तो आप जानते ही हैं कि ' जिसतरह एक म्यान में दो तलवारें नहीं समातीं, उसीतरह मैं और समता ह्न जीवराज के हृदय में एक साथ नहीं रह सकते थे। अतः मुझे जीवराज से उपेक्षा ही करनी पड़ी और मैं उससे नाता तोड़कर पुनः अपने पुराने रूप में आ गई।''

यहाँ ज्ञातव्य है कि कर्म की जाति-विरादरी में अनेक पुरुषों से प्रेम संबंध जोड़ना-तोड़ना अपराध नहीं माना जाता। इसकारण मोहनी द्वारा जीवराज की उपेक्षा करने से कर्मकिशोर को अटपटा नहीं लगा।

मोहनी ने अपने भाई कर्मकिशोर से यह भी कहा कि ह्न ''तुम्हारी मित्रता भले ही अनादिकाल से है; पर अब शीघ्र ही छूटने वाली हैं; क्योंकि अब जीवराज अपनी पूर्व पत्नी समताश्री, पुत्री ज्योत्स्ना और पुत्र विराग के कहने में आ गया है। उसे हमसे मुक्त होने का मार्ग मिल गया है; अतः क्यों न तुम्हीं उसका साथ छोड़ दो।''

कर्मकिशोर को बहिन मोहनी की बातें जँच तो गई; परन्तु वह जीवराज से एक बार साक्षात्कार करके उसकी मनःस्थिति स्वयं समझना चाहता था एतदर्थ उसने अनेक प्रश्न किए।

कर्मकिशोर के प्रश्नों के उत्तर में जीवराज ने कहा ह्न ''कर्मकिशोर आप ही क्या? जितने बाह्यदृष्टि देखने वाले हैं, वे सब भी यही कहते हैं कि मोहनी ने जीवराज को मोहित करके अपने मोहजाल में फँसा लिया और उसकी यह दुर्दशा कर दी और अन्त में मेरी उपेक्षा की, अनादर किया। इतना ही नहीं मुझे घी की मक्खी की भाँति निचोड़ कर फैंक दिया; परन्तु उनका यह कहना और सोचना सर्वथा असत्य है तथा मोहनी ने जो आपसे कहा, वही बात सही है। मोहनी ने मुझे मोहित नहीं किया, बल्कि मैं ही अपने सत्पथ से भटक कर उस पर मोहित हुआ था। इसमें उसकी कतई गल्ती नहीं है।

मोहनी का तो स्वभाव ही सम्मोहन में निमित्त बनना है; परन्तु जो अपनी खोटी होनहार से और अपनी तत्समय की उपादान योग्यता से मोहित होता है, मोहनी मात्र उसी के सम्मोहन में निमित्त बनती है। जिसकी भली होनहार है, वह मोहनी के सुन्दर रूप, आकर्षक व्यक्तित्व और लुभावने हाव-भाव को देखकर भी उसकी ओर आकर्षित नहीं होता।

यदि मोहनी का वश चलता होता, वह आकर्षित करने की क्षमतावान होती तो अच्छे-अच्छे ऋषिमुनि, व्रती-ब्रह्मचारी भी उससे नहीं बच पाते? सेठ सुदर्शन को रिझाने की क्या मोहनी ने कोई कम कोशिश की थी; परन्तु वे विचलित नहीं हुए सो नहीं हुए। अतः मोहनी को दोष देना मुझे बर्दास्त नहीं है। मेरे भ्रष्ट होने में सन्मार्ग से भटकने में शतप्रतिशत मेरी ही भूल है, मोहनी निमित्त मात्र है और वह अपने पर्यायगत स्वभाव को भी तो नहीं छोड़ सकती। मेरा उससे यह कोई प्रथम परिचय नहीं है। पहले भी इस पर मोहित होता रहा हूँ। अतः अकेले उस पर दोषारोपण करना बिल्कुल व्यर्थ है।'' **(क्रमशः)**

बाहुबली भगवान महामस्तकाभिषेक

ह्न गुणमाला भारिल्ल, जयपुर

आस्था ह्न देशना ओ देशना !! तुम जल्दी-जल्दी कहाँ जा रही हो, क्या बात है, तुम मुझसे बिना कहे ही चल दी ?

देशना ह्न हाँ आस्था मेरा अभी एक दो दिन में ही प्रोग्राम बन गया जाने का; मैं प्रवचन में गई थी, वहाँ बाहुबली भगवान का मस्तकाभिषेक हैं ह्न ऐसा बताया गया था। मैंने सोचा कि वहाँ बहुत से लोग जा रहे हैं, साथ भी हैं तो यात्रा भी करूँ एवं मस्तकाभिषेक भी देखलूँ; अतः उसकी तैयारी के लिये जा रही थी। तुम्हें तो धर्म में आस्था है नहीं, इसलिये तुम्हें नहीं बताया।

आस्था ह्न देशना ! तुमने तो गजब कर दिया, मेरी पक्की फ्रेन्ड होकर भी ऐसा धोखा ?

देशना ह्न धोखा नहीं आस्था, यह तो अपनी-अपनी रुचि का परिणाम है, मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूँ न ! तू मेरा साथ ऐसे कार्यों में नहीं देगी।

आस्था ह्न नहीं, देशना नहीं; ऐसा मत सोचो। तुम मुझे बतलाओ तो सही, मस्तकाभिषेक क्या बला है?

देशना ह्न अरे पगली! तुम मस्तकाभिषेक को बला कहती हो। बला होती तो वहाँ पर लाखों लोग क्यों जाते? तुम्हें जानना है तो सुनो। दक्षिण भारत में एक राजा रायमलजी थे, उनके वरिष्ठ मंत्री चामुण्डराय विलक्षण बुद्धि के धनी, राजनीतिज्ञ थे। वे दिगम्बर धर्म में आस्था रखते थे। उनके मन में था कि यह जो पहाड़ है, उसमें एक जिनबिंब सौम्य खड़गासन मुद्रा में निर्माण हो सकता है; अतः राजा से आज्ञा लेकर उन्होंने अपने विकल्प में भगवान बाहुबली की 57 फीट उतंग प्रतिमा का आकार प्रस्फुटित किया और कारीगर को अपनी इच्छा से अवगत कराया। वह कारीगर भी अत्यन्त बुद्धिमान था, उसने उस पहाड़ को खोद-खोद कर वहाँ शान्त-सौम्य मुद्राधारी, मनमोहक भगवान बाहुबली की प्रतिमा का निर्माण कर दिया; जो आज श्रवणबेलगोला नामक तीर्थस्थल के रूप में विश्वभर में जाना जाता है।

आस्था ह्न (बीच में ही) देशना ! यह तो बताओ कि चामुण्डराय ने बाहुबली को ही क्यों चुना, वे तो तीर्थंकर नहीं थे। अपने तो 24 तीर्थंकर हैं, उनमें से किसी की प्रतिमा क्यों नहीं बनायी ?

देशना ह्न हाँ ! तुम ठीक कहती हो। बाहुबली तीर्थंकर नहीं थे; पर भगवान तो वे थे ही; और उत्तर भारत में तो 24 तीर्थंकरों के पाँचों कल्याणक होने से वहाँ तो धर्म का प्रचार-प्रसार बहुत हुआ था साथ ही तीर्थस्थलों की भी कमी नहीं थी। दक्षिण भारत में कोई तीर्थस्थली नहीं थी। एक और जबरदस्त कारण यह था कि सभी तीर्थों पर पद्मासन या चरण होते थे। उन्हें अनेक लोग अपना मान लेते थे, झगड़ा करते थे; यह सब बात मंत्री चामुण्डराय के ख्याल में थी। वैसे एक किवन्दिती भी सुनने में आती हैं कि चामुण्डराय की माँ को कुछ ऐसा आभास था कि बाहुबली की एक विशालकाय मूर्ति की स्थापना की जाय, जो कि दिगम्बरत्व में हो। चामुण्डराय ने अपनी माँ की इच्छा का आदर कर इस मूर्ति का निर्माण करवाया ।

आस्था ह्न यह अरिहन्त अवस्था की मूर्ति तो नहीं हो सकती है; क्योंकि अपने मन्दिरों में कभी भगवान की बेलों वाली प्रतिमा नहीं देखी । क्या भगवान की प्रतिमा पर भी बेलें होती है ? क्या हम बेलों वाली प्रतिमा की पूजा अर्चना कर सकते हैं?

देशना ह्न आस्था ! तुमने ठीक कहा, मैं तुम्हें इसके बारे में विस्तार से बताती हूँ। तुम्हें समय है इतना, थोड़ी लम्बी कहानी है।

आस्था ह्न हाँ बताओ तो सही ! मुझे तो जानना ही है। बाहुबली कौन थे, मैं तो नाम ही जानती हूँ, उनके बारे में पूरा बताओ न ?

देशना ह्न राजा ऋषभदेव के 101 पुत्र थे, उनमें भरत और बाहुबली प्रमुख रहे हैं । भरत-बाहुबली सहित अपने पुत्रों को अलग-अलग राज्य देकर ऋषभदेव ने दीक्षा ले ली। भरत को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई; अतः वे छह खण्ड के अधिपति हुए और सभी ने उनकी आधीनता स्वीकार कर ली; किन्तु उनके भाई बाहुबली ने उनकी आधीनता स्वीकार नहीं की। वे भाई को तो नमस्कार करने को तैयार थे, पर उन्हें चक्रवर्ती भरत को नमस्कार करना अभिष्ट नहीं था।

मंत्रीगणों ने सोचा कि यह तो युद्ध जैसी स्थिति बन गई है। यदि युद्ध हुआ तो ये तो चरम शरीरी हैं, सैनिक ही मरेंगे। उन्होंने अपनी-अपनी बात रखी, और निश्चित हुआ कि जनता की हानि न हो और दोनों भाई ही निबटलें। यह बाहुबली के मंत्रियों की चतुराई थी और वे इसमें सफल भी हो गये। वे जानते थे कि भरत से बाहुबली कद में ऊँचे हैं, बलवान भी हैं। अतः बाहुबली ही जीतेंगे, सो उन्होंने नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध, मल्लयुद्ध का प्रस्ताव रखा और वे स्वीकार किये गये। तीनों युद्धों में बाहुबली ही जीते। उससे भरत को थोड़ी सी आत्मग्लानि हुई और मन ही मन उन्होंने अपने को धिक्कारा। सोचा कि यह सब इस चक्ररत्न के कारण ही हुआ है; अतः नहीं चाहिये मुझे ऐसा चक्र रत्न । उन्होंने चक्ररत्न को बाहुबली के पास फेंक दिया। चक्ररत्न बाहुबली की तीन प्रदक्षिणा देकर पुनः भरत के पास आ गया। वहाँ देखने वालों को लगा कि गुस्से में आकर भरत ने बाहुबली पर चक्र चला दिया।

आस्था ह्न गुस्से में ही तो ऐसा किया होगा, हार गये सो बाहुबली को मारने के लिये चक्र चला दिया।

देशना ह्न नहीं; नहीं, ऐसा नहीं है। दिव्य शस्त्र अपने परिवार वालों पर नहीं चलते हैं, इस बात को भरत भी जानते थे। मैं तुम्हें पहले ही कह चुकी हूँ कि उन्होंने तो यह सब आत्मग्लानि से ही किया था; पर यह तो दुनिया है, सब अपने-अपने मन की कहते हैं। वैसे तो दोनों जन्म से ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे ।

आस्था ह्न (बीच में ही) क्षायिक सम्यग्दृष्टि ! और यह मरने-मारने का भाव। मैंने तो सुना है सम्यग्दृष्टि बहुत धर्मात्मा होते हैं।

देशना ह्न मैं तुमसे यही तो कहती हूँ कि तुम दोनों समय प्रवचन में चला करो। वहाँ जाने से सब बातें धीरे-धीरे समझमें आने लगेंगी। सुनो ! वे दोनों भाई क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो थे ही; तद्भव मोक्षगामी भी थे; अतः वे उसी भव से मोक्ष भी चले गये। आस्था ! भरतजी के बारे में तो कहा जाता है कि '**भरतजी घर में ही वैरागी**' एवं '**चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सारिखे भोग, कागवीट सम गिनत हैं सम्यग्दृष्टि लोग।**'

भरतजी तो चक्रवर्ती होते हुए एवं 96 हजार रानियों के भोग-भोगते हुए भी वैराग्य परिणतिवाले थे। जैसा प्रश्न तुमने किया; वैसी ही चर्चा एक बार उनकी सभा में भी हुई। भरतजी ने कहा कि तुम जाओ और मेरा रणवास देखकर आवो; अपने हाथ में एक तेल से भरा कटोरा भी लेकर जाओ; पर ध्यान रहे ! तेल से भरे दीपक की एक बूँद भी जमीन पर नहीं गिरे। यदि एक भी बूंद जमीन पर गिरी तो साथ में चलनेवाले दो जवान तुम्हारी गर्दन उड़ा देंगे। वह व्यक्ति पूरे रणवास का चक्कर काटकर आया। भरतजी ने पूछाह्न कहो कैसा लगा रणवास ? वह बोला कि रणवास कहाँ देखा ? यदि तेल की

बूँद गिरती तो गर्दन कट जाती। मैं तो तेल का कटौरा ही देखता रहा। भरत ने अट्टहास कर कहा कि जब तुम मृत्यु के डर से रणवास न देख पाये तो हम चतुर्गति भ्रमण के भय से ये सब भोग कैसे भोग सकते हैं ?

आस्था ह्न देशना ! फिर बाहुबली का क्या हुआ; जब भरत से बाहुबली तीनों युद्धों में जीत गये तो राज्य तो बाहुबली को ही मिला होगा न?

देशना ह्न तुम कैसी मूर्खता भरी बातें करतीं हो, अरे पगली ! चक्ररत्न तो भरत के पुण्योदय से ही प्रकट हुआ था; अत: राज्य तो उनको ही मिलना था। यह हुण्डावसर्पणीकाल का प्रभाव था, जिससे चक्रवर्ती का मान भंग हुआ। चक्ररत्न वापिस भरत के हाथ में पहुँच गया, वह इस बात का स्पष्ट संकेत था कि चक्रवर्ती तो भरत ही हैं। इस संकेत को समझने में बाहुबली को देर न लगी और वे राजपाट से विरक्त हो गये (दीक्षित हो गये)। वे एक वर्ष तक ध्यान में अड़िग रहे, घोर तपश्चर्या करने लगे। यहाँ तक कि उनके शरीर पर बेलें चढ़ गई, साँप, बिच्छुओं ने बिल बना लिये। पर उन्हें ..

आस्था ह्न उन्हें क्या हुआ, वे तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे न ?

देशना ह्न हाँ, हाँ, थे; पर लोक में ऐसा प्रचलित है कि उन्हें यह शल्य थी कि मैं भरत की भूमि पर खड़ा हूँ। यह सब सोचकर भरत भी उनके पास गये और उन्हें सम्बोधन किया; लेकिन सही बात तो यह है कि उनकी काललब्धि ही नहीं आई थी। जब तक उपादान में योग्यता न हो तबतक निमित्त भी नहीं मिलते; अतः भरतजी का संयोग देखकर ही यह कह दिया गया कि उन्होंने माँफी मांगी तो उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सर्वज्ञ परमात्मा बन गये। यह **श्रवणबेलगोला की विशाल प्रतिमा** भी उसी तपश्चर्या की प्रतीकृति है।

आस्था ह्न यह मस्तकाभिषेक रोज नहीं होता क्या? हम तो सुनते हैं कि प्रक्षाल रोज सुबह किया जाता है, फिर उनका यह मस्तकाभिषेक बारह वर्ष में एकबार क्यों मनाते हैं ?

देशना ह्न यह तुमने अच्छा प्रश्न किया। सुनो ! अपने यहाँ मन्दिरों में प्रतिमा छोटी-सी ही होती है कि जिनका प्रक्षाल करना सम्भव है। बाहुबली की मूर्ति तो इतनी विशाल खड़गासन है कि जिसका रोज-रोज पूरा प्रक्षाल होना सम्भव नहीं है। उनके अभिषेक के लिये मस्तक के पास से बड़ा भारी मचान बनाना पड़ता है, जिसके बनाने में कम से कम छह माह लगते होंगे और लाखों रुपये भी। दूसरा एक कारण यह भी है कि बाहुबली को केवलज्ञान होने में 12 महिने लग गये; अतः उसके प्रतीक रूप में भी यह आयोजन 12 वर्ष पश्चात् करने की प्रथा है। उसमें लाखों लोग इकट्ठे होते हैं और अपनी भावना को पूरा करते हैं। जैसे सभी लोग शिखरजी गिरनारजी आदि तीर्थों पर जाकर अपने को धन्य मानते हैं ह्न ऐसे ही श्रवणबेलगोला जाकर भगवान बाहुबली के चरणों का प्रक्षालन करके भी अपने को धन्य मानते हैं।

आस्था ह्न ऐसा विशाल उत्सव हो रहा है। मैं भी चलूँगी श्रवणबेलगोला! और अपने जीवन को धन्य करूँगी। ●

शुभ कामना !

नातेपुते (महा.) निवासी श्री शीतल रायचन्द दोशी के सुपुत्र चि. चेतन दोशी का लोणंद निवासी श्री ईश्वरप्रसाद रतनलाल व्होरा की सुपुत्री डॉ. मीनल जैन के साथ दिनांक 26 दिसम्बर, 05 को विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ। आप दोनों अपने लौकिक जीवन की उत्कृष्टता के साथ उज्जवल पारलौकिक जीवन का निर्माण करें ऐसी शुभ कामना है।

आपके विवाह उपलक्ष में श्री रतनलालजी व्होरा द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति को 1001/- रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा कार्यक्रम सत्र-2005-06

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
गुरुवार 26 जनवरी 2006	1. बालबोध पाठमाला भाग-1 (बा.प्रथम खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग-1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग1(प्रवेशिका प्रथम खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (बरैयाजी) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
शुक्रवार 27 जनवरी 2006	1. बालबोध पाठमाला भाग-2 (बा.द्वितीय खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग-2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग2(प्रवेशिका द्वितीय खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष) 10. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष)
शनिवार 28 जनवरी 2006	1. बालबोध पाठमाला भाग 3 (बा.तृतीय खण्ड) मौखिक 2.वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 3 (प्रवेशिका तृतीय खण्ड) 3. रत्नकरण्डश्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट -

(1) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह 9 बजे से शाम 5 बजे तक के बीच में कभी भी सैट किया जा सकता है।

(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

(3) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग 1 व 2 की परीक्षायें मौखिक में लेवें।
शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।

तत्त्वचर्चा

प्रवचनसार का सार 42

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

यहाँ यह शंका हो सकती है कि जब दशप्राणों से जीने का नाम व्यवहारजीव है तो फिर गाथा में ऐसा क्यों कहा कि चार प्राणों से जीवे सो जीव है।

समाधान यह है कि सभी संसारी जीवों के तो दश प्राण नहीं होते; किन्तु चार प्राणों से रहित तो कोई भी संसारी जीव नहीं है; क्योंकि एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन इन्द्रिय, एक कायबल और आयु व श्वासोच्छ्वास ह्न ये चार प्राण ही होते हैं। इसीप्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।

रसना इन्द्रिय और वचनबल बढ जाने से दो इन्द्रिय के छह प्राण, घ्राण इन्द्रिय बढ जाने से त्रीन्द्रिय के सात प्राण, चक्षु इन्द्रिय बढ जाने से चार इन्द्रिय के आठ प्राण और कर्ण इन्द्रिय तथा मनोबल बढ जाने से पंचेन्द्रिय के दश प्राण होते हैं।

स्व-पर को जानने की अनंतशक्ति जिसमें विद्यमान है, उसका नाम निश्यचजीव है तथा जो देह और आत्मा की मिली हुई असमानजातीय-द्रव्यपर्याय है, उसका नाम व्यवहारजीव है।

दश प्राणों से भेदविज्ञान के माध्यम से आचार्यदेव मनुष्यादिपर्यायरूप असमान-जातीयद्रव्यपर्याय और त्रिकालीध्रुव भगवान आत्मा के बीच में विभाजन रेखा खींचना चाहते हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि रागादि परिणाम के कारण कर्मबंधन हुआ, कर्मबंधन से शरीरादि नोकर्म का संबंध हुआ और उससे यह जीव और पुद्गल के संयोगरूप व्यवहारजीवत्व हुआ; क्योंकि स्वभाव तो संयोग का कारण है नहीं और न ही परद्रव्य संयोग का कारण है। इसप्रकार इस व्यवहारजीवत्व के होने के मुख्य कारण मोह-राग-द्वेष ही हैं।

इसके बाद आचार्यदेव फिर एकबार इन मोह-राग-द्वेष भावों के कर्त्ता और अनुमंता होने का निषेध करते हैं। वे कहते हैं कि ज्ञानी की ऐसी भावना होती है कि ये मोह-राग-द्वेषभाव न मैंने किये हैं, न कराये हैं और न मैं इनकी अनुमोदना ही करता हूँ।

व्यवहारजीव व निश्चयजीव का उल्लेख समयसार ग्रंथ में भी आता है। जब यह कहा गया कि नवतत्त्व की संततिवाला सम्यग्दर्शन मुझे नहीं चाहिए तो शिष्य ने प्रश्न किया कि नवतत्त्वों में तो जीव भी शामिल है। क्या आपको जीव अर्थात् आत्मा के श्रद्धानवाला सम्यग्दर्शन भी नहीं चाहिए ?

वहाँ इसका उत्तर देते हुए कहा है कि ह्न नवतत्त्वों में जो जीव है, वह व्यवहारजीव है और मैं वह व्यवहारजीव भी नहीं हूँ।

यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि वहाँ नवतत्त्वों के जीव को व्यवहारजीव कहा है, परजीव नहीं; क्योंकि परजीवों को तो अजीव में शामिल कर लिया गया है।

इसप्रकार यह ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार भगवान आत्मा को मनुष्यादि-पर्यायरूप व्यवहारजीव से विभक्त करनेवाला अधिकार है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जो ये लोकालोक को जानने वाला ज्ञानस्वभावी जीवतत्त्व है; वह स्वयं भी जानने में आता है; क्योंकि उसमें भी प्रमयेत्व नाम का धर्म है।

यदि हम आत्मा को मात्र ज्ञानरूप ही माने, ज्ञेयरूप नहीं; तो हमने समग्र आत्मा को ग्रहण नहीं किया; क्योंकि उसमें प्रमेयत्वगुण को शामिल नहीं किया।

जो लोग ऐसा समझते हैं कि मैं तो जाननेवाला हूँ और सारा जगत ज्ञेय है; उन्होंने जब अपने आत्मा को जानने योग्य ही नहीं माना तो फिर वे उसे जानने का प्रयास ही क्यों करेंगे ?

आज सभी के दिमाग में एक बात ही छाई रहती है कि तीर्थों का उद्धार करना है, जिनवाणी का उद्धार करना है; जो पुरानी हस्तलिपियाँ हैं, उनका उद्धार करना भी जरूरी है। हमें टोडरमलजी को प्रकाश में लाना है। हमारे बहुत से प्राचीन लेखक अंधकार में हैं, उनको भी प्रकाश में लाना है।

इसप्रकार उनके दिमाग में उद्धारों की एक बड़ी सूची रहती है। जब मैं उनसे विरत रहता हूँ तो बहुत सारे लोग कहते थे कि आप इसमें रस क्यों नहीं लेते हैं ?

उन लोगों से मेरा कहना यह है कि आप लोगों ने जो ये इतनी लम्बी सूची बनाई है, इसमें आत्मोद्धार नाम का उद्धार नहीं है; इसलिए मुझे इसमें रस नहीं आता। यदि आप यह सूची मुझसे बनवायेंगे तो उस सूची में सबसे पहला नंबर आत्मोद्धार का ही होगा।

यदि आप लोग ही सूची बनाते हैं तो भी कोई परेशानी नहीं है। यदि आपकी बनाई सूची में आत्मोद्धार का नाम अन्त में भी आ जाय तो भी मैं आपके काम में शामिल हो जाऊँगा; लेकिन यदि उसमें आत्मोद्धार का नाम ही नहीं होगा तो मेरा जुड़ना संभव नहीं है।

असद्भूतव्यवहारनय से जिन्हें अपना कहा जाता है ह्न ऐसे स्त्री-पुत्रादि और देह को ही संभालने में लगे हैं हम। हमने इनको अपना मान रखा है। यही सबसे बड़ी समस्या है और इसी समस्या के समाधान के लिए यह ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार लिखा गया है।

जो लोग इस ज्ञानज्ञेयविभागाधिकार को स्थूल कहकर उपेक्षा करना चाहते हैं और दूसरी बातों को सूक्ष्म कहकर उसमें उलझ रहे हैं; उन लोगों से मैं कहना चाहता हूँ कि वे ऐसा कहकर आचार्य कुन्दकुन्द को और उनके टीकाकार अमृतचन्द्र को स्थूलबुद्धि कह रहे हैं।

उन आचार्य कुन्दकुन्द को स्थूलबुद्धि कह रहे हैं, जिन्होंने प्रवचनसार में **पज्जयमूढ़ा हि परसमया** की चर्चा में मनुष्यादिरूप असमानजातीय-द्रव्यपर्याय से ही भिन्नता की बात की है और उसी के द्रव्यसामान्यप्रज्ञापन अधिकार में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, अवान्तरसत्ता और महासत्ता आदि विषयों की चर्चा की है, जो कि अत्यन्त सूक्ष्म है।

ध्यान रहे आचार्य कुन्दकुन्द ऐसी सूक्ष्म चर्चा के बाद भी ज्ञानज्ञेय-विभागाधिकार में फिर देहादि से भिन्नता की ही बात करते हैं।

मात्र दशप्राण का नाम ही व्यवहारजीवत्व नहीं है, उसमें चेतन का अंश भी शामिल है। व्यवहारजीव उसे कहते हैं, जो दश प्राणों से जीता था, जीता है और जीवेगा।

यह कथन करनेवाली प्रवचनसार की गाथाएँ इसप्रकार हैं ह्न

इंदियपाणो य तहा बलपाणो तह य आउपाणो य।
आणप्पाणप्पाणो जीवाणं होंति पाणा ते ।।१४६ ।।
पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता ।।१४७।।

(हरिगीत)

इन्द्रिय बल अर आयु श्वासोच्छ्वास ये ही जीव के।
हैं प्राण इनसे लोक में सब जीव जीवे भव भ्रमे ।।१४६।।
जीव जीवे जियेगा एवं अभीतक जिया है।
इन चार प्राणों से परन्तु प्राण ये पुद्गलमयी ।।१४७।।

इन्द्रियप्राण, बलप्राण, आयुप्राण और श्वासोच्छवासप्राण ह्न ये (चार) जीवों के प्राण हैं।

जो चार प्राणों से जीता है, जियेगा और पहले जीता था; वह जीव है। फिर भी प्राण तो पुद्गल द्रव्यों से निष्पन्न (रचित) हैं।

शरीरादि नोकर्म (संयोग) और मोह-राग-द्वेषरूप भावकर्म (संयोगी भाव) के रूप में द्रव्यकर्म दो प्रकार से फलते हैं। स्त्री-पुत्रादि संयोगों में अघातिया कर्मों का उदय निमित्त होता है और मोह-राग-द्वेषरूप संयोगी भावों में घातिया कर्मों का उदय निमित्त होता है।

इसीलिए तो ऐसा होता है कि घातिकर्मों के नष्ट हो जाने पर मोह-राग-द्वेषरूप संयोगी भाव तो नष्ट हो जाते हैं; लेकिन संयोग नष्ट नहीं होते; विद्यमान रहते हैं। घातिया कर्मों का नाश करनेवाले तीर्थंकर अरहंतों के समवशरण आदि बाह्यविभूति विद्यमान रहती है, उनकी देह भी रहती है, यशस्कीर्ति रहती है; क्योंकि इन सबकी उपस्थिति होने में अर्थात् संयोगों के रहने में अघातियाकर्म ही निमित्त हैं और वे उनके विद्यमान हैं।

इसप्रकार यह तो निश्चित हुआ ही कि कर्म संयोग और संयोगी भावों के रूप में दो प्रकार से फलित होते हैं, साथ में ये दस प्राण भी तो संयोगरूप होने से कर्मों का ही फल हैं। दस प्राण कर्म का फल होने के कारण सभी कर्मों को भी दस प्राणों में गर्भित कर लिया। द्रव्यकर्म तो कर्म हैं ही; रागादिभाव रूप भावकर्म भी कर्मों में ही शामिल हैं, यहाँ तक कि शरीरादि भी नोकर्म होने से कर्म ही हैं; इसीलिए तो छहढाला की निम्नपंक्ति में कहा है कि ह्न

वर्णादि अरु रागादितैं निजभाव को न्यारा किया।

वर्णादि संयोग और रागादि संयोगी भावों से निज आत्मा को भिन्न किया अर्थात् भिन्न जाना, माना और भूमिकानुसार उनका अभाव भी किया।

वास्तव में यह पंक्ति निम्नांकित समयसार कलश का पद्यानुवाद है ह्न

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा, भिन्ना भावाः सर्व एवास्य पुंसः।
तेनैवांतस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी, नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ।।

वर्णादि व राग-मोहादिभाव इस भगवान आत्मा से भिन्न ही हैं; इसलिए अन्तर्दृष्टि से देखने पर भगवान आत्मा में ये सभी भाव दिखाई नहीं देते; किन्तु इन सबसे भिन्न, सर्वोपरि एक आत्मा ही दिखाई देता है।

इसके बाद पौद्गलिक प्राणों की संतति (प्रवाह परम्परा) की प्रवृत्ति का अन्तरंग हेतु कहनेवाली गाथा प्रस्तुत करते हैं; जो निम्नानुसार है ह्न

आदा कम्ममलिमसो धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे।
ण चयदि जाव ममत्तिं देहपधाणेसु विसयेसु ।।१५० ।।

(हरिगीत)

ममता न छोड़े देह विषयक जबतलक यह आतमा।
कर्ममल से मलिन हो पुन-पुनः प्राणों को धरे।।१५०।।

जबतक देहप्रधान विषयों में ममत्व को नहीं छोड़ता; तबतक कर्म से मलिन आत्मा पुनः-पुनः अन्य-अन्य प्राणों को धारण करता है।

यहाँ देहप्रधान विषयों से तात्पर्य ऐसे विषयों से हैं; जिनका कहीं न कहीं देह से संबंध जुड़ता हो। पाँच इन्द्रियों के विषय त्यागने की बात भी देह से जुड़ती है; क्योंकि पाँचों इन्द्रियों के विषय देह से सम्बन्धित ही हैं।

टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में ७ वें अध्याय में निश्चयाभासी का जो प्रकरण लिखा है; उसमें निश्चयाभासी का सबसे बड़ा दोष यही बताया है कि वह जो पर्याय अभी है, उससे तो इन्कार करता है और जो पर्याय अभी नहीं है, उसमें एकत्व करता है।

देखो भाई ! पर्याय से आत्मा भिन्न है ह्न यह बात शत-प्रतिशत सत्य है; लेकिन वह मनुष्यादि संसारी पर्यायों में या सिद्ध पर्याय में से किसी न किसी एक पर्याय में रहता अवश्य है और उसके प्रत्येक गुण की प्रतिसमय एक पर्याय होती ही है ह्न यह बात भी तो शत-प्रतिशत सत्य ही है।

यदि पर्याय आत्मा से पृथक् ही है अर्थात् पर्याय है ही नहीं, तो फिर उससे पृथक् रहने का क्या अर्थ है ? गधे का सींग मेरा नहीं है, आकाश का फूल मेरा नहीं है, बाँझ का बेटा मेरा नहीं है ह्न यह सब कहने का क्या औचित्य है ? जिनकी वर्तमान में सत्ता ही नहीं हो, उनसे पृथक् होने की क्या बात करना ?

आत्मा केवल ज्ञानस्वभावी तो है; लेकिन वर्तमान में हमें-तुम्हें केवलज्ञान नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं है। भूत की पर्याय भूत में है और भविष्य की पर्याय भविष्य में है। सभी पर्यायें स्वकाल में हैं; परकाल में नहीं। आचार्यदेव भेदविज्ञान के लिए कहते हैं कि जो पर्याय वर्तमान में है, उसकी भी उपेक्षा करो; क्योंकि उसके लक्ष्य से आत्मा का अनुभव नहीं होगा।

द्रव्यदृष्टि में तो पर्याय है ही नहीं और पर्यायदृष्टि से वर्तमानपर्याय से आत्मा तन्मय है। तात्पर्य यह है कि द्रव्यदृष्टि से तो मैं भगवान आत्मा हूँ और पर्यायदृष्टि से मैं मनुष्य हूँ। वर्तमान में देव तो मैं न द्रव्यदृष्टि से हूँ और न पर्यायदृष्टि से। अभी वर्तमान में जो मिथ्यादर्शनरूप पर्याय है, उस पर्याय से भिन्नता की बात यहाँ है।

अरे भाई ! आत्मा केवलज्ञानस्वभावी नहीं; अपितु केवल ज्ञान-स्वभावी है।

इसप्रकार टोडरमलजी ने निश्चयाभासी के स्वरूप का भलीभांति दिग्दर्शन कराया है। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

हार्दिक बधाई !

मूर्धन्य साहित्यकार स्व. यशपाल जैन की स्मृति में आयोजित अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता में टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के छात्र कमलेश जैन को द्वितीय पुरस्कार स्वरूप 2000/-रुपये प्रदान किये गये । प्रथम पुरस्कार (3000/-रुपये) कु. आरती जैन, लश्कर-ग्वालियर को तथा तृतीय पुरस्कार (1000/-रुपये) कु.नंदिनी जैन खड्गपुर-प.बंगाल को प्रदान किया गया।

निबन्ध का विषय **'भारतीय परम्पराओं और जीवन मूल्यों की रक्षा कैसे हो'** रखा गया था। ज्ञातव्य है कि प्रतियोगिता में देश के विभिन्न राज्यों ह्न यथा महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखण्ड, पंजाब, प. बंगाल और दिल्ली के सैंकड़ों विद्यार्थियों के निबन्ध प्राप्त हुये थे ।

महाविद्यालय परिवार उक्त प्रतिभाओं को हार्दिक बधाई देते हुये इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

पं. टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व गजब का ग्रंथ

बीना से श्री गुलाबचन्दजी जैन लिखते हैं ह्न 'तेरापंथ के विषय में विशेष जानने की जिज्ञासा से जब टोडरमल व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को पढा तो परम आल्हाद हुआ। ग्रंथ में आपने (डॉ. भारिल्ल) इतिहास से लेकर सम्पूर्ण जैन शासन की रचना करके जिनशासन को जीवंत तीर्थ बनाया है। धन्य है आपका मंगलमय जीवन। संदर्भित ग्रंथ सूची से पता चलता है कि जिसतरह पण्डित टोडरमलजी ने जैन-अजैन अनेकों शास्त्रों का अध्ययन करके श्री मोक्षमार्गप्रकाशक की रचना की उसीतरह आपने भी जैन-जैनेत्तर ग्रंथों को पढकर एक वीतराग मार्ग की प्रभावना हेतु खोज की। वास्तव में आप ही सच्चे विद्यावारिधि हैं। वैसे तो आपके द्वारा रचित सभी ग्रन्थों में जिनागम का सार भरा है; परन्तु पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व तो गजब का ग्रंथ है। इसमें तो आपने सभी कुछ लिख दिया, कुछ कसर बाकी नहीं रखी। मैं आपके मंगलमयी यशस्वी उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।'

श्रीमती अनामिका जैन को पीएच.डी. की उपाधि

जयपुर : जैन अनुशीलन केन्द्र की शोध छात्रा श्रीमती अनामिका जैन को दिनांक 10 दिसम्बर, 05 को राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा **'भट्टारक शुभचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व'** विषय पर पीएच.डी की उपाधि प्रदान की गई। डॉ.(श्रीमती) जैन ने यह शोध कार्य डॉ. पी.सी. जैन, निदेशक, जैन अनुशीलन केन्द्र, राज. विश्वविद्यालय के निर्देशन में किया है।

डॉ. अनामिका जैन को उनकी इस उपलब्धि के लिये जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई। **ह्न प्रबंध सम्पादक**

हार्दिक शुभ कामनायें

श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित जिनेन्द्र शास्त्री को राजस्थान के गृहमंत्री श्रीमान् गुलाबचन्दजी कटारिया द्वारा राजकीय फतह उच्च माध्यमिक विद्यालय उदयपुर के विकास समिति एवं छात्र निधि कोष का सदस्य मनोनित किया गया है। आपको जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक शुभ कामनायें !

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

14 से 18 जनवरी, 2006	**सागर**	**पंचकल्याणक**
19 जनवरी, 2006	**निसईजी (म.प्र.)**	**मेला**
04 से 9 फरवरी, 2006	**कोटा**	**पंचकल्याणक**
11 से 17 फरवरी, 2006	**श्रवणबेलगोला**	**महामस्तकाभिषेक**
09 से 26 मई, 2006	**देवलाली**	**प्रशिक्षण-शिविर**
26 मई से 16 जुलाई, 06	**विदेश**	**धर्म प्रचारार्थ**
23 जुलाई से 1 अगस्त,06	**जयपुर**	**शिक्षण-शिविर**
04 से 09 अगस्त, 2006	**लंदन**	**पंचकल्याणक**
20 से 26 अगस्त, 2006	**मुम्बई**	**श्वेताम्बर पर्यूषण**

वेदी मंगवा सकते हैं

चौडाई 78 इंच, गहराई 66 इंच, ऊँचाई 116 इंच

श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर, 161, भूलेश्वर रोड, मुम्बई-02 के पुनर्निर्माण से खाली हुई पीतल से बनी वेदी, जिसका फोटो एवं साईज संलग्न है। मंदिरजी का ट्रस्ट बोर्ड बिना किसी कीमत के देश के किसी भी दि.जैन मंदिर (समाज द्वारा संचालित) को देना चाहता है। इच्छुक समाज/पंचायत पत्र लिखकर 28 फरवरी, 06 के भीतर-भीतर आवेदन कर मंगवा सकते हैं।

ह्न मैनेजिंग ट्रस्टी, जैनमंदिर

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) जनवरी (प्रथम)2006

RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127